प्रश्न कौन तोड़ेगा

(काव्य-संग्रह)

रचनाकार
श्रीकान्त जोशी

चिन्मय प्रकाशन

प्रकाशक
चिन्मय प्रकाशन
चौड़ा रास्ता, जयपुर-३

प्रथम संस्करण १९७१



आवरण
डा० जगदीश गुप्त

मूल्य
७.५०

मुद्रक
दी यूनाइटेड प्रिन्टर्स
राधा दामोदर की गली
चौड़ा रास्ता, जयपुर-3

तीव्र अनुभूति : प्रभावशाली बिम्ब

माखनलाल चतुर्वेदी से भवानी प्रसाद मिश्र तक हिन्दी काव्य भाषा की धारा ऐसी रही है जिसने बातचीत के सहज मुहावरे को अनुभूति की तीव्रता और तर्ज के बाँकपन के सहारे एक नया संस्कार दिया। आधुनिक हिन्दी की काव्य भाषा के मूल्यांकन में बहुधा आलोचक इस अत्यन्त महत्वपूर्ण दान को भूल जाते हैं। लेकिन सच बात यह है कि नयी कविता इसी जमीन पर खड़ी हुई है।

श्रीकान्त जोशी ने इस उत्तराधिकार को बड़ी कुशलता से सहेजा है। उनकी रचनाओं में एक और नया तत्व जुड़ा है—सहज लेकिन बड़े प्रभावशाली बिम्ब। उनकी इन कविताओं में से अनेक तो इन्हीं तत्वों के सफल सामंजस्य के कारण बड़ी प्यारी लगती हैं। सहेज मानवीय सम्वेदनाएं और संतुलित चिन्तन के साथ-साथ प्रकृति के सौन्दर्य के साथ एक लगाव इन कविताओं को और भी प्रिय बना देता है। युवा-लेखन के नाम पर आने वाले ढेरों ढेर रीढ़विहीन, बासी, झुर्रीदार, विगलित लेखन के बीच इन कविताओं में जहां-तहां झलकता टटका ताजापन मुझे बहुत सुखद लगा है।

धर्मवीर भारती



श्रद्धेय

डा० कन्हैयालाल सहल

को

आभार

सर्वश्री डा. धर्मवीर भारती व डा. जगदीश गुप्त के विशिष्ट निष्पक्ष सहयोग के लिए मैं आभार व्यक्त करता हूं।

डा. कृष्ण बिहारी सहल ने इस संग्रह के प्रकाशन में तीव्र रुचि ली है। उनका सहयोग अविस्मरणीय है।

श्री ताराचन्दजी वर्मा ने अभिरुचि और कलात्मकता के साथ श्रेष्ठ कागज और गेट अप का उपयोग करते हुए इस संग्रह को सजीव बनाया है। मैं उनके प्रति भी अपने आभार व्यक्त करता हूं।



THE TRUE POET IS MOST EASILY DISTINGUISHED FROM THE FALSE WHEN HE TRUSTS HIMSELF TO THE SIMPLEST EXPRESSION, AND WHEN HE WRITES WITHOUT ADJECTIVES.

EZRAPOUND

(THE SPIRIT OF ROMANCE, PAGE 219

आत्म-वक्तव्य

कविता मुझे सहज प्राप्त हुई, आज भी मुझे प्रतीत होता है कि जीवन-मन्थन से प्राप्त नवनीत कविता में जिस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है वैसा दूसरी साहित्य-विधाओं द्वारा कठिन है।

कविता प्रकारान्तर से कवि-व्यक्तित्व की ही अभिव्यक्ति है। कवि-व्यष्टि के लिए उसका काव्य विकास उसके व्यक्तित्व का ही विकास (अथवा ह्रास) है। कवि-व्यक्तित्व को कवि कर्म से अलग करके देखने की पाश्चात्य मनोवृत्ति मुझे स्वीकार नहीं है।

व्यक्तित्व एक व्यापक वस्तु है, कवि के सन्दर्भ में तो उसकी व्याप्ति और भी अपरिसीम है, साथ ही जटिल भी है। वह जीवन की स्थूल रेखाओं में ही समाहित नहीं है, कवि की आकांक्षाएं, संभावनाएं सामर्थ्य असामर्थ्य, व्यक्त अव्यक्त, मनोदशाओं की भी कवि-व्यक्तित्व में सहिति होती है। कवि को पाने के लिए उसके व्यक्तित्व के चक्रव्यूह का संभेदन अनिवार्य है। यह कार्य वस्तु-दृष्टि के साथ व्यापक संवेदनशीलता की अपेक्षा रखता है, किसी शास्त्रीय मनोविश्लेपणवाद का आरोप यहां भ्रामक अतः खतरनाक भी सिद्ध हो सकता है।

व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होने के कारण कविता एक ओर एकान्त सृष्टि है, साथ ही दूसरी ओर सृष्टि का एकान्त भी है। वह समाज में कवि को और कवि में समाज को शेयर करती है।

कविता पर आरोपवादी दृष्टि एक तरह का बलात्कार है।

मैंने चाहा है कि कविता के द्वारा एक ओर मैं अपने को प्राप्त करूं दूसरी ओर अपने को अभिव्यक्त कर अपने को बिखेर भी दूं, अपने आपको सबमें प्राप्त करूं।

इस कार्य के लिए मैंने अपने व्यक्तित्व से यह अपेक्षा की है कि वह अपने दायरों का अतिक्रमण करते हुए सब तक पहुंचे तथा साथ ही सब के दायरों में घुल मिलकर अपनी इयत्ता का साक्षात्कार करे।

प्रथम अपने को विसर्जित करना और पुनः अपनी विसर्जनशीलता में से अपने ही को अर्जित करना एक शाश्वत परिचक्र है। जब तक यह परिचक्र गतिशील है कवि कभी भी गतयौवन नहीं हो सकता। निराला और माखनलाल इसी सत्य के अद्वितीय प्रमाण हैं।

इस संग्रह की कविताएँ मेरे प्रश्नाकुल मन की संकेतमयी अभिव्यक्ति है। यद्यपि सभी कविताएँ प्रश्नमुखी नहीं हैं किन्तु फिर भी सूक्ष्म प्रश्न-चिन्हों का अस्तित्व अनेक कविताओं के आरम्भ, मध्य अथवा अन्त में रेखांकित होता रहता है।

अपने को बांध कर जीवन और समय की उन्मुक्तता को अस्वीकार करते रहना मुझे कभी स्वीकार नहीं हुआ। उन्मुक्त वायुमण्डल का आनयन उन्मुक्त अन्तःकरण से ही संभव है। यही कारण है कि इस काव्य-संग्रह का शीर्षक पूरे संग्रह को निबद्ध करने में संकोचशील प्रतीत होता है।

मुझे आशा है कि इस संग्रह से उन अनेक काव्य-हृदयों को विशेष सन्तोष होगा जो काव्य की शुद्ध भूमिका में विश्वास रखते हैं, जो यह मानते है कि कविता 'मैनेरिज्म' मात्र नहीं है, न वह शब्दों के चौकाने वाले ढांचों में की गई खानापूर्त्ति है और न वह कोई ऐसी वस्तु है जिसमें दुरूहता का भद्दा रंग भर कर लोगों को आतंकित किया जाय। मेरे लिए कविता बहुत कुछ रही है और इस बहुत कुछ के साथ मैंने यह भी अनुभव किया है कि वह एक विकासशील व्यक्तित्व की सहज, उन्मुक्त, किन्तु गरिमामयी अभिव्यक्ति है।

श्रीकान्त जोशी
(विजयादशमी १९७०)

जवाहरगंज
खण्डवा (म. प्र.)

अनुक्रमणिका

प्रश्न

प्रकृति

यात्रा स्मृति

पुरुषार्थ

१

प्रश्न

कम-जादा

आकाश
एक लहरता हुआ आँचल
छूट कर उड़ता हुआ,
ज़मीन
एक घूमती हुई औरत
चीखती हुई
मैं
एक संशय, एक भ्रम
धरती से जादा हूँ ।
आकाश से कम ।



आत्म-रति

अपनी छाँह को लपेटे
अपने ही फूलों को सूँघते
अपने ही फलों को चखते हुए
मैं देख रहा हूँ
कुछ भारी भरकम वृक्ष
यात्रिओं की तरह चलते हुए।

अपनी असभ्यता खोलूँ
कुछ मुझ जैसे आप लोगों से बोलूँ....
....
व्यस्त नहीं
मानता हूँ कि मैं रहा निठल्ला
जो, इतने दिनों तक
अपने आप से नहीं मिला !



मैं वहीं हूँ

हर रोज अखबार पढ़ता हूँ
और कद में घट जाता हूँ,
हर रोज घटनाओं और वक्तव्यों से
प्रश्न उठते हैं
और मुझे मधुमक्खियों की तरह-घेर लेते हैं,
आँखें बन्द हो जाती हैं
शब्द निश्शब्द
हाथ अनुपस्थित
और पैरों में अज्ञात भय लिपट जाते हैं,
अपने ही आप में मुझे लगता है
कि मैं नहीं हूँ
या जहां करोड़ों लोग
अपना ही शव भोग रहे हैं
मैं वहीं हूँ ।

सच क्या है ?

क्या यह सच है
जब हम संस्कृति का नाम लेते हैं
तो, भयभीत होते हैं ?....
और उन्हें ही मित्र कह पाते हैं
जो विपरीत होते हैं !
क्या यह सच है
हम अनाक्रमण का उद्घोष करते हैं
तो, शिखण्डियों को मज़ा आता है
हमारा हर शब्द, निश्शब्द,
अस्तित्व, अनस्तित्व की ध्वजा उड़ाता है।
क्या यह सच है
प्रजातंत्र को हम अच्छा कहते है
क्यों कि वह हमारे पक्ष में है इस वक्त
अन्यथा, जरूरतों ने हमें खरीद लिया है
और उनके मुताबिक
कहीं हम फर्श होते हैं, कहीं तख्त !
क्या यह सच है
लोग अप्रिय बना दिये जाते है
जो इस भूमि को बना सकते हैं
वसन्त अथवा बहार
और वे चुनावों में खड़े नहीं होते
क्योंकि करते रहना चाहते हैं
मनुष्यता का सत्कार।

त्यौहार का दिन

उम्र की कुदाल से खोदो गयी
जिन्दगी की जमीन पाटो
श्रौर यह खयाल (जो शायद सच है)
रद्द करो,
कि हम भूखे हैं
    फटे वस्त्र नहीं सीते हैं
    गम खाते हैं
    हवा पीते हैं।
मुस्कराओ,
कहो कि हम खुश हैं
नहीं ··········
कहाँ ···········
हम हताश नहीं
हम उदास कहाँ ?
मित्रों को कण्ठ दो, चाय दो, पान दो
कर्ज श्रौर उधारी की आलपीनों पर खड़े रह कर
उधर का मान लो
इधर का सम्मान दो।
जगमगाओ।
मन को श्रँधेरे की आग से जला कर
द्वार पर श्राग से श्रँधेरा जलाओ,
पैरों में मोच है

दर्द भरी लोच है
पर नहीं
आज का दिन कि तुम चल कर दिखाओ
यह नहीं कि घर में रहो
यह नहीं कि मुंह छुपाओ
त्यौहार का दिन है
सामने आओ ×



× अमेरिका से सन् १९६६ में प्रकाशित Modern Hindi Poetry: An Anthology में अनुवादित-संग्रहीत !

भय

आधी से ऊपर रात
एक मेमने की करुण मिमियाहट से कांपती हुई
दूर तक फैली कोलतार की सुनसान सड़क
और एक छाया, एक और छाया के संग
—भागती हुई

कौन है यह ?
निश्चय ही है व...धि...क
आसन्न मृत्यु—भय में गुंथी यह मिमियाहट
मेरी सहिष्णुता के लिए है
—बहुत अधिक !

पर हुआ वही
जो इन दिनों होता है हर आक्रोश पर
मैंने महज करवट बदल ली
तीसरी मंजिल की फर्श पर !



ग़म का मनचीता है

ग़म को आपने देखा नहीं,
पहिचाना जरूर है
सभी जातियों, वर्णों और मनुष्यों के लिये
वह सजातीय है,
सभी से उसने सम्बन्ध कायम किये हैं,
हम सब जो हैं
उसी के हैं, उसी को जिये हैं!
कुछ को वह व्याहे है;
कुछ जिन्दगानियाँ,
वह उधारी में पाये है!
अनदीखती जिन्दगी की हथकड़ियों से
(जिन्हें हम साँस कहते हैं)
कुछ को उसने छूट दी है,
और कुछ ने उसी की बदौलत
हर साँस यों ली
मानो मौत की घूँट पी है।

•

ग़म की शक्ल क्या है?
वह कहानी है कि वाकया है?
मुक़ाम कहाँ है?
क्या उसकी निशानी है?
इन प्रश्नों की मुश्किलों से कौन निपटें!

मानिये कि वह चींटा है
जिन्दगी के शहद से मिलने को देर है—
कि जा चिपटे ।

•

ग़म एक अमूर्तता है !
रिक्त रहने वाली जगहों को
वही तो पूरता है !
वह हम-सफर भी है,
हमारे ही पाँवों चलता है,
रोते हैं, रोता है,
हँसते हैं, हँसता है !
शब्दों के दोनों मे
बमुश्किल ठहरता है;
शब्दों के जूड़े में
बमुश्किल बँधता है,
(कोई यदि बाँधे वाल्मीकि होता है)
यों सब कहते हैं,
कौन मगर कहता है ?

•

शायद यह वही है
वहाँ दूर ....बहुत देर
नीर-नदी वही है !
सूख गये निशानों में
उसी की सही है !
मानिये, यह वही है !

•

शायद वह यहाँ है !
मुस्कराती हुई अधरों को
पाँखुरियों के कोनों में—
रुक कर जो देख रहा,
दर्शक को छलने की
क्रीड़ा जो खेल रहा,
आँखों की छलकन जो
भीतर ही ठेल रहा,
छाती की धड़कन जो
भीतर ही सेज रहा......
शायद वह यहाँ हैं
नहीं वह कहाँ है ?

•

जब-जब हवाओं के
पाँव लड़खड़ाये हैं,
फूलों के पाँखुरी-वस्त्र
नहीं रह पाये हैं !
डालों पर कोयल ने गाया है
और गया पिया नहीं आया है !
धरती ने खिचवायी
हल-रेखा है
अंकुरों ने न झाँका,
न देखा है !
बन्द कलियों की उमर
बदतमीज भ्रमरों ने
बना ली सुभीता है

जलाशयों, जल-कूपों के जल को
हर आवश्यकता के समय
पाया गया रीता है;
सब एक बात है
ग़म का मनचीता है !

•

वक्त जाने कैसा है ?
इधर कुछ ऐसा है—
कभी भूले भटके ही
जब धूप आती है !
और जाड़े की सुबह
खिड़कियाँ खोल जाती है !
एक सचमुच की हँसी
ठीक तरह आती है,
एक सचमुच की तृप्ति
आभास दे जाती है !
तभी चौंक जाता हूँ
अपने अस्तित्व की
अप्रत्याशित अर्थमत्ता पर ग़ौर कर
बढ़ते पाँवों को
रोक जाता हूँ !
इस तरह जी लेना
लगता है
ज्यादती है, कयामत है !
यह ठीक नहीं
ग़लत आदत है !!

●

वजह

सारे आकाश का अँधेरा बना रहा
एक दो नक्षत्रों की वजह से।
पूरा अँधेरा हो
तो लोग जुटें, पूरी ताकत से
पूरे उजेरे के लिए
ये दो चार तथाकथित भले आदमी
कारण हैं
तीन-चौथाई अँधेरे के लिए।
केवल भले आदमियों का
हम क्या करें ?
बेहतर है इन्हें हटाया जाय,
(कुछ थोड़े बुरे मगर सक्रिय आदमियों के लिए)
इनकी जगह से,
सारे आकाश का अँधेरा बना रहा
एक-दो नक्षत्रों की वजह से !

सही तौर की बारी

हम सब की आकृतियों पर झूठी मुस्कानें
नकली कलई किये चेहरों की हम दूकानें
बिकने को लाचार और कीमत दो पैसा
कुछ न कर सके, किये अगर तो सिर्फ बहाने

हम उस खण्डहर से जो बाहर से देता है
एक व्यवस्थित ताजे गृह का ताजा भ्रम
भीतर पर झंखाड़, आद्रता, टूटन, बिखरन
एक खोखलेपन का अजगर बैठा जम

हम कैसे हैं, अनिमंत्रित आगत से अप्रिय
अपनी आत्म-चेतना की विस्मृति से घायल
अपने स्वत्वों को अपने ही चमरौधों से
चूर-चूर करने की बेशरमी के कायल

कब तक भीतर की चीत्कारों को रोकेंगे
मुस्कानों के कच्चे-पक्के कॉर्क लगा कर
कब तक भीतर के रीतेपन को रोंधेंगे
सस्ते फिल्मी गीतों को दुहरा-दुहरा कर ?

जीते-जीते पुण्य हो गया पुण्य हो गया
जीते जीते पाप हुआ तो पाप हो गया
लक्ष्यहीन संक्रमणशील अपने पाँवों को
हमने रोका, जब-जब पंथ चढ़ाव हो गया

एक नहीं, हम ढ़ेर ढ़ेर हैं इस नरता के
अर्थ-विषमता ने जिनको अरअरा दिया है
जिनके नहीं हौसले थे आकाशों से कम
पर जिनको उत्कोचवाद ने ढहा दिया है

हम क्यों जीते है वैसा जो नहीं चाहिए
मातम का दिन और आप त्योहार गाइये
हँसने का क्षरण पानी में पिघला देते हैं
रोने की बिरिया मजबूरन हँसे जाइये ?

क्यों स्वाधीन देश में वह व्यक्तित्व नहीं है
सही बात को सह कर भी जो सही कह सके
गलत कामयाबी पर जिसको नाज़ नहीं हो
गलत हजारों लाखों में जो 'गलत' कह सके

जिधर देखलो दृष्टि उधर बौरा जाती है
लाश सत्य की झूठ पहन कर जी जाती है
गलत विशेषण, गलत प्रशंसा, गलत महत्ता
आरोपित करने में उम्र बिकी जाती है

न्याय, शक्ति की अंगुलियों पर नाच रहा है
नेत्रहीन कृति आलोकों को बांच रहा है
रक्तहीन हो रहो परस्पर की सहृदयता
और आदमी आदम को ही श्रांच रहा है

प्रतिभा के ज्वालामुख अन्तर्मुखी हुए है
कुछ ओठों को तार रजत के सिये हुए हैं
जिनके काया-वस्त्र धुले हैं, अधर खुले हैं
वे सब आरोपित कालिख से रँगे हुए हैं

ये दबने का और दबाने का कैसा युग
रोटी, कपड़ा, रहन, रोजगी, बहुत वजन है
कब तक अपनी गर्दन को हम झुका रखेंगे
और दाबने वालो का कब तलक शगुन है ?

दाब मगर कब तक सकता है कौन किसी को
रूई भी चुटकी में पिस कर चुभ जाती है
गलत तरीकों से जीने वालों के दिन हैं
देखें सही तौर को बारी कब आती है ?



समानान्तर गलत

वड़े मकानों के बीच की सड़क थी ।
मैंने देखा
धनिक अकरुण बच्चों का उद्दण्ड समूह
एक गरीब राहगीरनी को घेर कर
मार रहा है उसके कांपते हुए निर्वसन बच्चों को,
क्रोध बहुत आया
यहाँ तक कि हरएक को पकड़ूं, उठाऊं—
और खा जाऊँ कच्चों को,
पर नहीं
मैंने कुछ किया नहीं
मुझे मुआफ करें आप
मैं आदमी की तरह जिया नहीं !
इन दिनों
और पिछले कुछ वर्षों से भी
आदमी से, कई दरजे बड़ी हो गई है
—उसकी नौकरी,
लोग-बाग क्या-क्या नहीं करते ?
जूतों पर रखते हैं टोपी
और प्लेटों पर छोकरी !
मैंने, केवल, अपनी करुणा को
अपनी सहज आत्मीयता को ही तो हना था
मैं यदि और भी आगे लुढ़क जाता

तो क्या मुझे मना था ?
मैं महज़ देखता रहा
अपनी क्षुब्ध आंखों से
बच्चों को, उनकी रुद्र मां को, उनके खामोश
सिसकने को,

एक गलत के समानान्तर पैदा हुए
दूसरे गलत
याने अपने को ।

●

विक्रयित

हम सब बिके हुए लोग हैं
बीसवीं सदी के छोटे कद आदम हम
बाहर से ज्यादा हैं, भीतर से कम !
औपचारिकता ने हमारी आत्मीयता खरीद ली है
संवेदनाओं की निर्झरनी में जल नहीं है
महज आवश्यकताओं पर परस्परता जीती है !
शक हमें जोड़ता है
घृणा रक्षा करती है
लोभ अस्तित्व की रीढ़ है
एकान्त भी इन दिनों एकान्त नहीं
एक भीड़ है !
हमारी नसों के खून में
अप्राकृतिक कामुकता का प्रवाह है
अनैच्छिक और आकस्मिक सन्तानों से
पिता ऊबा हुआ
माता हतोत्साह है !
विवश, अनाकांक्षित मृत्यु
हमारी मुक्ति है
जिससे हम भयभीत रहते हैं
पहले का आदमी इस तरह तो नहीं मरता था
जिस तरह हम आज मरते हैं ।

अनिश्चय का निश्चय

हमें निश्चय हैं अनिश्चय का।
भविष्य ?
लाटरी के टिकट की तरह है
वह सभी के नाम है
क्यों कि किसी के भी नाम नहीं है।
वर्तमान ?
जीर्ण वस्त्र की तरह हमसे लिपटा है
वस्त्र की जीर्णता नग्नता नहीं ढाँकती
तो क्या करें ?
वस्त्र के न होने से तो बेहतर है ?
अतीत ?
उसका गौरव हमें शर्मिन्दगी देता है
अगौरव
सिद्ध करता है कि हम जहाँ के तहाँ हैं।
न अतीत, न वर्तमान
हम सब किसी भविष्य में जिन्दा हैं,
भविष्य, जो किसी के नाम नहीं है
इसी से
वह हम सभी के नाम है।

●

पास की दूरी

आपमें से कोई
जो महाशया या महाशय है
आकर देखे
मेरे मकान के सामने
एक जलाशय है ।
पास आकर उधर न जाना
आसान नहीं है
क्यों कि मध्य में कुछ भी घमासान–
नहीं है।
और तब आप संभवतः कहेंगे
जैसा कि बहुतों ने कहा है–
"कैसा सुन्दर स्थान है
कितनी बढ़िया हवा है ?
जल में दूर तक बहती हुई तरंगे हैं
मगर उनकी चमक में
कांपती हुई स्थिरता है !
इस तरह दरवाजा खोल कर
आपस में कुछ भी नहीं बोल कर

देखते जाना, थकाता नहीं
आप तो यहाँ रहते ही हैं
हमें तो कोई बुलाता नहीं !"
बातें तो बढ़ जाती हैं स्वभावत:
अत: बढ़ेंगी
महाशय कहेंगे
या महाशया कहेंगी—
यह जगह कविता के काबिल है
और आप ?
आपके पास क्या नहीं है ?
दूर तक जाने वाली कल्पना
पास तक छूने वाला दिल है
मैं जानता हूँ कहने के ही लिए
ये बातें कही हैं
इनमें रत्ती भर भी तो नहीं
कि जो सही हैं ।
इतने दिनों से हूँ मगर
पड़ोसी जलाशय से
कभी बात नहीं हुई
न उसने कुछ कहा

न मैंने कुछ सुना
अपने-अपने रास्तों पर ही हमने
अपने-अपने को धुना।
रात होने पर कई बार यह चन्द्रमा
चांदनियों के साथ जलाशय में उतरा है
मगर मैं
मकान की सीढ़ियाँ उतर
कभी अगवानी को नहीं पहुँचा !
इतना निकट रहा हूँ लहरों के
कि मैंने उन्हें छुआ ही नहीं
ठीक वैसे
जैसे कभी, अपने से
अपने लिए माँगी दुआ नहीं।

●

मुझे मुक्त करो

वह खूबसूरत चेहरा
और उस पर
दशमी के चन्द्रमा सा कपाल
उस पर झूलती हुई बदमिजाज़ लटें !
गर्दन झटक कर पीछे फेंकिये
हथेलियों से पलटिये
या कंघों से खींचिये
पर नहीं, ये नहीं मानेंगी
जो करना हो सो आप कीजिए !
ठीक ऐसी ही बात है
ऐसी ही जिद्दी लटों की तरह
वह खयाल है
जो मुद्दत से सामने है
जिसने कोशिशों की कलाइयाँ मरोड़ दी हैं
और बेहिसाब परेशानियाँ जोड़दी हैं।
दूसरे खयालों से मैंने कहा
इस ख़याल को धकेलें
बहुत मुश्किल में हूँ
यह वजन कब तलक झेलें ?
पर सुनता कौन है ?
पहाड़ों पर उठा हूँ
दरियाओं में झुका हूँ

हवाओं से खेला हूँ
यहाँ तक कि
न ठहरने वाली जगहों में रुका हूँ
कि यह खयाल हटे
यह अँधेरा छँटे
यह विवशता झुके
पर सुनता कौन है ?
राहगीर की आँखों में समायी हुई राह—
की तरह
वह फैले जाता है
वह पसरे जाता है !
क्या यह सम्भव है कि राह पर—
कुछ वृक्ष ऊगें
कुछ शाखाएँ तनें,
क्या यह सम्भव है कि राह पर—
कुछ पौधे उठें
कुछ क्यारियाँ बनें
और इस तरह वह राह छुप जाय
याने यह खयाल मिट जाय.........?
ओफ्फ
फिर वही ख़याल
कहाँ हो, कहाँ हो
मुक्त करो
मुझे मुक्त करो ।

●

निर्णयः अनिर्णय

अनिर्णय भी निर्णय है
यह भी सच
वह भी सच
सच दो हैं, क्या भय है ?
अनिर्णय भी निर्णय है।

तिमिर बहुत गहरा है
ज्यों वह है, केवल वह,
केवल वह ठहरा है,
तिमिर बहुत गहरा है
ऐसे गहराये में
चमक कहीं दिपती है–
तो वह निःसंशय है।
अनिर्णय भी निर्णय है।

एक नहीं, एक नहीं
जो है, वह एक नहीं
यह भी है
वह भी है

आत्मघाती संघर्ष

क्या यह सच नहीं है
समय ने मोड़ दिया है हमें
किसी अज्ञात आकृति में ढलने के लिए ?
हम, किसी परम विन्दु के लिए–
टूट जाते
मगर झुकते नहीं
वह न रहे !
समय के नातरतोब पठारों में
विद्रोही वृक्ष की तरह ऊग आते
मगर रुंधते नहीं
हम वह न रहे ।
किसी शिखर की चुनौती को
सत्कार से देखने वाली नज़र
हमारी नहीं है,
समस्याएं सिहनी सी
मैदानों में घूमती हैं
कोई शिकारी नहीं है !
पराजय, पलायन और शाब्दिक आक्रोश
इन्हें पहनने का शौक, हमारा गर्व है,
जीवन में, कविता में
राजनय अथवा व्यवस्था में
हमारी असमर्थता का पर्व है !

पराजय के क्षणों में

सब व्यर्थ होता है
पराजय के क्षणों में !
अधिकार, अनुरोध बन जाते हैं
रास्ते गतिरोध,
अस्तित्व के गूंजते हुए अहसास
बदल जाते हैं
खामोशी के व्रणों में !
सब व्यर्थ होता है
पराजय के क्षणों में !
ठीक है, वही तो नहीं बनता कहते
ध्वजा को खून में निरुद्देश्य सहते
हम गिर जाते हैं
अपने ही मनों में
सब व्यर्थ होता है
पराजय के क्षणों में !
देखते नहीं बनते चेहरे
मा⋯यू⋯स
लिख लिख कर काटे गये
शब्दों का जुलूस
रचता है विराट क्षोभ
समर्थनों में,
सब व्यर्थ होता है

प्रतिबिम्ब का सत्य

नदी तट
तीसरे पहर रात
चारों तरफ से घेरता हुआ
कोई एक, अज्ञात..........!!
सामने जल
जल ही जल।
आकाश के प्रतिबिम्ब से सिहरता हुआ भी–
सबल,
समस्त जल प्रतिबिम्ब से
रक्षित है इस वक्त,
अन्यथा अँधेरा तो
सर्वभक्षी है कम्बख्त !



शरद भोर

आज की सुबह, भाई ! मान गया
जाने कौन है वह
जिसका खूबसूरत अहसान
मैंने अपने माथे लिया ?
चाय जो रिश्वत् है मेरे उठने की
रात-दूध को भी बनी बढ़िया
बिल्कुल पास में सट कर
भाप में सांसों की गन्ध भर
बड़ी आँखों ने कहा, पियो पिया;
रात के बाद की सुबह इस तरह होती है ?
मान नहीं पाया था
मेरे ही बाँटे तो था यह प्यार
ऊगने के पहले का सूर्योपहार
जान नहीं पाया था !
सिरहाने-प्रकाश में
लेटे ही लेटे
मैंने सुनी मन्दिर की आरती
पड़ोस की महरी ने
ओठों से गीत कहा
(हाथों से बर्तन को माँजती)
यात्रा-भरे-पाँवों ने
कुहरा-भरे पन्थों को

शायद फिर जोड़ लिया होगा
मैंने फिर याद किया
दूर... ......मेरी मां ने भी
तुलसी-जल छोड़ दिया होगा !
सुबह
कितनी अच्छी सुबह
दूर........पास की बातों के संग
सुबह
कितनी अच्छी सुबह
उड़ती हुई खुशबू
खिलते हुए रंग ।



शरद भोर

आज की सुबह, भाई ! मान गया
जाने कौन है वह
जिसका खूबसूरत अहसान
मैंने अपने माथे लिया ?
चाय जो रिश्वत् है मेरे उठने की
रात-दूध को भी बनी बढ़िया
बिल्कुल पास में सट कर
भाप में सांसों की गन्ध भर
बड़ी आँखों ने कहा, पियो पिया;
रात के बाद की सुबह इस तरह होती है ?
मान नहीं पाया था
मेरे ही बाँटे तो था यह प्यार
ऊगने के पहले का सूर्योपहार
जान नहीं पाया था !
सिरहाने-प्रकाश में
लेटे ही लेटे
मैंने सुनी मन्दिर की आरती
पड़ोस की महरी ने
ओठों से गीत कहा
(हाथों से बर्तन को माँजती)
यात्रा-भरे-पाँवों ने
कुहरा-भरे पन्थों को

शायद फिर जोड़ लिया होगा
मैंने फिर याद किया
दूर... ......मेरी मां ने भी
तुलसी-जल छोड़ दिया होगा !
सुबह
कितनी अच्छी सुबह
दूर........पास की बातों के संग
सुबह
कितनी अच्छी सुबह
उड़ती हुई खुशबू
खिलते हुए रंग ।



जाड़े का दिन

सुवह ?
एक कांपती हुई स्त्री,
सूर्य ?
एक ठंडे अजनवी की तरह,
हवा ?
धनुष-सी, आकाश की भुजाओं में
जो
छोड़ रहा है हिम-शरों को
जगह-जगह !

कोहरा ?
एक भीगी हुई शाल.

थोड़ी देर और
शाल को जतन से लपेट कर
चली जायेगी यह स्त्री
और, अजनवी अधिक ऊष्णोन्मत्त
उसे ढूंढता रहेगा
शिखर तक !
जहाँ उसे मिलेगी शाम
लाल स्कार्फ पहने हुए
जड़े हुए सितारों के ब्लाउज
—से आवृत्त !

●

सुबह है

गा, सुबह है ।
रात तो अपनी वसीयत लिख गई है
बन्द उजियारी तुझे ही मिल गई है
देख तो कितना धनिक तू हो गया है
पूरबी बगिया कि जब यह खिल गई है
कुल अँधेरा ढल चुका परछाइयों में
गढ़ फतह है ।
गा, सुबह है ।
बात तू कह तो सही अब सब सुनेंगे
और अधरों की गुलाबी पाँखुरी से
छन्द-रागों को बिखरने दे, चुनेंगे ।
कौन घुटनों पर रखे है कोहनी
और माथे से हथेली को लगाए ?
कौन जिसको यह सुबह की रोशनी
ज्योति का अंजन लगाना भूल जाए ?
कौन बैठा है पलक के द्वार की कुण्डी लगाकर ?
रूपसी उजली किरण जिसके किवाड़ों को बजाए

मगर वह सोता रहे
जागे न उठ कर ?
इस तरह कैसे चलेगा ?
ज़िन्दगी का दूत सन्तों की तरह घर–
आ गया हो,

और कोई उठ न दौड़े
यह असह है ।।
गा सुबह है ।।



शाम आज की

वर्षा के भींगते हुए दुशालों से
आज की यह शाम बच गई है,
स्पर्शहीन हवाओं ने इसे उदास बना दिया है,
आकाश से उतरते हुए अँधेरे के विराट बाज ने
एक चिड़िया की तरह इसे दबोच लिया है
और किसी सियाहीसोख की तरह
इसको जवान रौनक और हरी रंगीनी को
बिखरती हुई सनसनाहट और खामोशी ने—
सोख लिया है !

डरे हुए परिन्दों की तरह
खुशमिज़ाजी और जिन्दादिली के शब्द
बाहर चहक नहीं पाते
फूलों ने गंधों को इस तरह बाँधा है
कि अगल बगल के रास्ते भी महक नहीं पाते।
दीवार पर लगी हुई दीवार-घड़ी का
टिक्......टिक्क्
लगता है कि जैसे कोई डाँट रहा हो
कोई आया हुआ नहीं
पर महसूस होता है कि कोई है
और वह अदृश्य की तरह
अपनी अनसही बेचैनी को
बाँट रहा हो !

इस शाम की ज्यादती को
हम क्यों सहें ?
क्यों नहीं हम शोर करें, गाएँ, गूंजें
किसी हम-उम्र को आवाज़ दें
और अपनी प्रतिध्वनि से इश्क करें ?
क्यों न किसी से मैच बॉक्स लेकर
अपनी टूटी कुर्सी को दिखा दें
और इस तरह
एक प्रतीक्षोत्सव करें ?
वो कि जो दूर हों
और सियाह शाम की बेरोक दीवारों में
घुट रहे हों
मेरे पास आएँ,
मैं उन्हें एक गीत दूंगा
जिसे वे सब एक कोरस की तरह गाएँ !
यह ठीक नहीं
कि इच्छा के खिलाफ़
अँधियारियों द्वारा बरते जाएँ
और कुछ गुमनाम नक्षत्रों की हरकतें
सर झुका कर सहते चले जाएँ !
यह ठीक नहीं कि जिस जगह रहना—
नहीं चाहते,
वहां टूटते हुए रहें
और जिस रोशनी से बात करना चाहते हैं

उससे कुछ भी न कहें !
ठीक तो यह है
इन अँधियारिओं और नक्षत्रों की प्रतिकूलताएँ
हमें न छलें
और इस शाम को
रोशनी की पोशाकों,
इठलाती हुई हवाओं
और खिलखिलाहटों के नगमों में हम बदलें ।



अस्तोत्सव

फुनगियों पर वात्सल्य की हथेली की तरह
फैली हुई सूर्य-किरण
सहसा ही सिमिट गई
रबर से पोंछे गये
चिह्नावशेष की तरह
मटमैलता बच रही
रोशनी मिट गई ।
नभ-गंगा की लहरों में
दो नक्षत्र
अपनी पहली चमक में टिमटिमाये
चिड़ियों ने सकुटुम्ब नाद किया
अपनी प्रार्थनाओं के शब्द
गंध की तरह बहाये ।
शिशु-मेघ प्रतीची कीं ड्योढ़ी पर
विदा-मुद्रा में
रंगीन हो उठा,
एक उलटा चमगीदड
खुशियों के अँधेरे में
एक दो तीन हो उठा !
दूर
मन्दिर से दूर
शहर की बत्तियाँ

एक टोने की तरह जगमगा गईं
कि घड़ियाल बज उठे
तालियाँ खनक उठीं
परमेश्वर को पुकारों में उतारा गया
भक्तों ने परिक्रमाएँ दीं।
मन्दिर की बगल से
इकहरी और अटपटी सड़क ने
एक इक्के को टोका
एक ज़िद्दी बच्चे की तरह
झुरमुटों को छेड़ता रहा
सई साँझ का झोंका !
ताल में मुँदते हुए कमलों ने
बँधी हुई अंजुलियाँ दुहराईं, नकल की,
डूबता हुआ बिम्ब अनुकृति हुआ
किसी ख़ूबसूरत शकल की !
धीरे-धीरे अँधियारियों के जल में
रंगों की तरह प्रतीची घुल गई
सूरज उतर गया,
धीरे-धीरे मन्दिर की भींत से—
टिका हुआ 'मैं'
अपनी निष्क्रियता में बिखर गया !
सूर्य तो राह में है
पूर्वोन्मुखी है

यह अस्तोत्सव भिन्न है
मैं अनिश्चित हूँ
पथान्वेशी हूँ,
मेरा अस्तित्व
फन उठे सर्प की तरह
प्रश्न-चिह्न है !

●

अन्यमनस्क

आकाशों में बिना वजह जो छाये बादल
सब निर्जल है, बड़ी रात तक घूम रहे हैं
बहुत-बहुत अनमना, अशुभ सन्नाटा है
चमगादड़ तक शाखाओं में लूम रहे हैं।
हवा पांव को, अंगद जैसी, रोप खड़ी है
अस्त-व्यस्त सी भूमि शिथिल सालस्य पड़ी है,
अनचाहे जो उठा लिया था मैंने नॉवल
बिना क्षोभ के दूर मेज पर फेंक दिया है
एक उभरती हुई घुटन है सन्नाटे में
भला न लगता, दूर......, कि जो जल रहा दिया है।
समय बीतता थका-थका सा, धीरे-धीरे
ज्यों कोई अधपका घाव आहिस्ता चीरे !



जाने के बाद

चांद मध्याकाश में आया हुआ है,
मौन नभ का भूमि पर छाया हुआ है।
राह पर पगचिह्न भी ताजे नहीं हैं,
देर से कोई नहीं आया हुआ है।

चांदनी अभिसारिनी बैठी हुई है,
उम्र के तप से निखर जाने के बाद !!
रात आधी के गुज़र जाने के बाद ।।

मंत्र से फूंकी हुई लगती हवा है,
एक भी पत्ता नहीं अब कांपता है
नीर दरिया का रुका है इस तरह कुछ,
चांद प्रतिबिम्बित अकम्पित झांकता है

फ्रेम की तस्वीर सी स्थिर है प्रकृति,
स्वप्न-मद में डूब तर जाने के बाद !!
रात आधी के गुजर जाने के बाद ।।

और तारे जो कि हम गिनते नहीं हैं,
बात भी जिनकी कभी सुनते नहीं हैं
होश की अपनी गवाही दे रहे हैं,
टूटते हैं, हम मगर चुनते नहीं हैं

मैं सिहर कर रह गया हूँ शून्यता से,
एक उडु के चुप बिखर जाने के बाद !!
रात आधी के गुजर जाने के बाद ।।



एक लम्बी वरसती हुई रात

दूर तक चमकती विजलियां
और लिपटती हुई घटाएं
रात ने जिनके रंग चुरा लिये हैं।
ताजा भीगी जुल्फों सी
गंधाती हवाओं के गुच्छे
कोई रह रह कर झोंकों में फेंक रहा है
आकाश में रवहीन घमासानता
धरती पर बूंदों की छम छमा छम
मानो हाथों में हाथ दिये
कुछ लड़कियों का दल थिरक रहा है !

× × × ×

निकट के स्टेशन से इंजिन की सीटी
लम्बी और देर तक
किसी मरी हुई औरत के जी उठने की तरह
भयद, विस्मयद,
और फिर इंजिन का चल पड़ना
शोर करती हुई मालगाड़ी का स-र-क-ना
और मुझको अखरना बेहद, बेहद !

× × × ×

यह वरसती हुई रात खामोशी में बोलती हुई
तिलस्मी उपन्यास की नायिका सी डोलती हुई
आश्चर्यहीन आश्चर्यों की सृजनेत्री
वक्षस्थल के बोझों को टटोलती हुई !

इसके खामोश परिवेश को कोई छेड़े मत
गुनगुनाए न कोई, कोई टेरे मत !

× × × ×

ये रात, ये बूंदों का कोरस, ये घटा
ये अँधेरी, ये बेशुमार बिजलियों की अदा
ये चुप……, किसी-गर्जना के इन्तज़ार सी
ये मेरी आँखें जिन्हें नींद से है परदा।
ये सियाह भीगते हुए बेरोक घेरे
तनहाइयों में डूबे से नगर के बसेरे
इनके भीतर कुछ धड़कता हुआ सा है
मैंने जिसे देखा है, मैंने जिसे छुआ है !
इस नर्म अँधेरी से कोई छेड़छाड़ न करे
खिड़कियों से देखे, खिड़कियों से गुज़रे !

× × × ×

बरसात की रातें मैंने कम नहीं देखीं
घटाओं की पातें मैंने कम नहीं देखीं
अन्धेरों की हस्ती को जिया है मैंने
रिमझिमाहटों को सर पै लिया है मैंने
आज की रात ?
आज की रात मगर और रात है यह
किसी परिचिता की फिरसे मुलाकात है यह,
इस रात के सीने में छुप जाय कोई
हरारतों को तौल ले सिमिट जाय कोई !
कोई सीटी न बजाये, कोई पखेरू न चहके
छेड़ करती हुई पायल न खनकाय कोई !

× × × ×

यह अँधरिया आजानु वेणियों सी है
यह रिमझिम चूड़ियों की बोलियों सी है
यह हवा कि पारदर्शी आँचल की वहकन
ये बिजलियों की टोली अंगुलियों सी है !
यह आकाश कि सोना उभरता हुआ सा
यह घनोन्माद कि कोई तड़पता-हुआ सा
कि इनमें लिपटती, सिमटती, सिहरती
ये रात कि सिरहाने तुम हो सुबुकती ?
मैं कि सोचता था जिसे कि कहीं गुम हो
गलत था मैं, सचमुच यह तो तुम हो ।
कोई इस अवकाश को निगल जाने दे मुझे
कोई इस आगोश में पिघल जाने दे मुझे
इस रात से कोई छेड़छाड़ न करे
मेरे जिन्दा ख्वाब से विगाड़ न करे ।



कितने पाषाणों को

कभी नाचते मोर तुम्हें रोका करते हैं
कभी कुंज के शोर तुम्हें टोका करते है
पपिहे ने क्या किसी शाख से कभी पुकारा
और कभी क्या आप पिकी के लिए तरसते हैं ?

झरनों ने जब कभी-कभी धारा की साड़ी
हिला-हिला कर देह धरा की दिखलायी है
कभी वासना जागी हैं मन में, नयनों में
क्षण भर रुकने की बोलो मन में आयी है ?

मरु की बालू के शिशु जो ताका करते हैं
आसमान के नटखट तारों की शैतानी
सोचा है क्या इन्हें वक्ष पर कभी उछालें
भली लगी है तुम्हें कभी इनकी मनमानी ?

कभी जगी है मृगतृष्णा की तृष्णा मन में
कभी जगी है प्यास तुम्हें प्यासे राही की
कभी धान के संगी संगाती से पूछा
कैसे राह चली जाती है खाई की ?

कभी तुम्हें, जब रात बीच की हो जाती है
और चांदनी सारी धरती भर जाती है
कनपटियों को हलके-हलके परस, सरकती
शोख़ हवा क्या नहीं बात कुछ कह पाती है ?

इतनी जल्दी ? अरे रुको, भागे जाते हो ?
बात अधूरी है भाई पूरी सुन जाओ
कितने पाषाणों को जो अक्सर गाते हैं
सुन पाये हो, उनका कोई गीत सुनाओ ?

यह तो है मालूम न होते हैं पत्थर में
बैजू जैसे जाने कितने स्वर के आशिक
ये जड़ता के गीत मनुजता के घावों को
धोने सहलाने में होते खूब मुआफिक।

तुम्हें नहीं मालूम कि थी आगी का गोला
रंगमंच बन रही हमारे जो जीवन का—
इस धरती के इन्द्रधनुष से दो परदे हैं
एक जनम का और दूसरा महामिलन का।

आगी से चट्टान बनी पीछे यह धरती
धीमे-धीमे बनी मृत्तिका वह कठिनाई
और मृत्तिका से फूटी जूही की बेला
ओस-कणों में पाकर अम्बर की गरमाई।

जूही के फूलों के फिर कुछ रांझे आये
खिले फूल जैसे सुन्दरता दीप जलाये
इन जलते दीपों की लौ की बनी लेखनी
जो कुछ वह लिख डाले बस वह होता जाये।

आकर्षण अनुराग और आराधन जग का
उसी कलम से बूंद-बूंद होकर छितरा है
तुमने अपने बन्द भवन में कुंठित होकर
वह नैसर्गिक रागाकर्षण ही बिसरा है !

क्यों रहते हो बन्द, चलो, खोलो दरवाजा
आने दो अल्हड़ स्वभाव की मस्त हवाएँ
अपनी खिड़की के परदों को उड़ जाने दो
छा जाने दो केश अगर मुख पर छा जाएँ !

तनिक निहारो, तुम्हें देखने ही की खातिर
पर्वत एड़ी पर होकर ऊँचा उठता है
अम्बर का हर एक सितारा तुम छू पाओ
इसीलिए वह झुका-झुका अक्सर लगता है

धरती को जितनी प्रिय है पर्वत की जड़ता
उतना ही वह प्यार मनुजता को करती है
तुम बैठे हो, करो भले मुँहफेरी जितनी
वह माता है, माता ही बन कर रहती है।



३

यात्रा स्मृति

यात्रा-स्मृति

मैं, किसी गंध को पा गया था
पी न सका,
दो समानान्तर तरंगों की तरह
जिन क्षणों में बहा
उन्हें
किसी वृत्त-क्षण में जी न सका,
अब
अनजियापन कसकता है
रह-रह कर, उभर कर
छिलकों को खा रहा हूँ मैं
फलों से अलग कर।

●

नेह-बटोही के जाने पर

दूर तक जाती हुई नज़दीक आंखों में
किस अदिखती विन्दु-कृति को देखने का यत्न
किस पराजय की पराजय की तृषा
दृष्टि की गहराइयों का कौन सा वह रत्न ?
यह बहुत दुर्लभ बहुत बेचैन क्षण है
रत्न को गहराइयाँ जब ढूँढती हैं
शक्तियां अस्तित्व से आंखें चुरा कर
जो नहीं है उस वजह से रूठतीं हैं।
इस तरह तुमने जिधर देखा दिशा वह
गर्विता होकर हुई बड़भागिनी है
तुम नहीं जाने, न जानोगे, मृगी-मन
खो गई आखिर तुम्हारी रागिनी है।



आकृतियों का सफर

यह एकान्त रीते पात्र की तरह था
मैंने तुम्हारी ही स्मृतियों से इसे भर दिया
तुम्हारी इकाई को मनपसन्द पहराव दिये
इस तरह अनेक आकृतियों में तुमने सफर किया ।

कमरे की रिक्त श्वेत चार दीवारी
तुम्हारी बहुत सी मुद्राओं में छुप गयी
जिधर दीठ घूमी सपन मुस्कराये
छायाएं उठीं, छायाएं झुक गयीं ।

ख़यालों की जमीन पर उतरता रहा
विवशता से बचने, ख़ुशियों में गुजरने के लिए
कुछ देर टहला भी, कुछ समय बहला भी

महज रिक्तताओं को कब तलक कोई पिये ?
आहिस्ता-आहिस्ता मैंने सर झुका लिया
अपने ही वक्षस्थल में छुप कर सो जाने को
जागते हुए सपनों से तो मन ऊब गया
निंदियाता हूं, निंदियारे सपनों के आने को ।



दस्तखत

डायरी में लिखे गये
दूध के हिसाब को
तुम्हारी लिखावट में देख कर
फिर खयाल आया !
नहाने के बाद
अपनी बनियान
अपने नासमझ हाथों से धोते समय
मैं तुम्हें याद करता हूँ !
सुबह 'चा' की प्याली से
जन्म लेते हुए घुँघराले धुएँ में
तुम्हारा नाम पढ़ता हूँ !
मुझे इन खयालों का अफसोस है ।
चाहता रहा हूँ तुम्हें बेवजह याद करूँ
निरुद्देश्य महसूस करूँ ।
यह कभी नहीं हुआ ।
शायद मैंने प्यार की निश्च्छलताओं को
नहीं छुआ ।
फिर भी मैंने तुम्हें याद किया है
और दूध के हिसाब के नीचे
आज की तारीख देकर
अपना दस्तखत किया है ।

तुम्हारा खत

बाज वखत
जब
साथ नहीं देता कोई
अकेलेपन के जल में
आत्मा तक रहती है डुबोई
वृक्ष हुई जाती है बात
कभी बीज की तरह गई थी बोई
दरवाजे पर होती है दस्तक
देखता हूँ खत
'तुम्हारा' खत !
शब्दों की भीड़ में
खोता है
अ...के...ला...प...न
वाक्यों में लिपटता हुआ घूमता जाता है
तुम्हारा किरण-बदन
आँसू ?
मुस्कराहटों की तरफ हो जाते हैं
शब्दों से छूटती हुई देह-गन्ध से
कमरे के आ...का...श...
भरे जाते हैं,
भीड़ भाड़ों के एकान्त में
यह दिलचस्प हरकत
खत
तुम्हारा खत ।

●

ऐसा क्यों हो गया

वातायन में परदे नहीं ठहरते हैं
फूल गंध की बांहों को फैलाते हैं
शाखाओं को बूढ़े पत्ते छोड़ रहे
नये छोकरे पत्ते धूम मचाते हैं।

हवा न माथे पर धरने देती पल्ला
और हया को छोड़ मचाती हो-हल्ला
मेरे मन की तरह मुझे हो गई हवा
मुझे न भाता बचपन का घर-मोहल्ला।

बिना लिए अंगड़ाई भीतर टूट रही
सांस बहुत ही अटकी अटकी छूट रही
छोटी-छोटी बातों से जी उचट गया
चौराहे पर जैसे कोई भटक गया।

ऐसा क्यों हो गया
कहां हो
बतलाओगे ?
कितने दिन बाद पाहुने घर आओगे ?

छवि : पवि

कपोलों पर रुक-रुक कर उतरती हुई
बूंदों की छवि
इन नेत्र-पुष्पों सहित मेरे सम्मुख चले आना
मुझे बहुत पसन्द हँसी बिखेरते हुए
स्नेह सरस करुण लहजे में समझाना—
"अच्छी तरह जाना।"
मुझे क्या समझ रखा है 'पवि' ?
रुक रुक कर उतरती हुई बूंदों की छवि ॥

स्थिर : अस्थिर

मैंने तुम्हें देखने के लिये
पुस्तकें हाथ में लीं और रखीं
मैंने तुम्हें देखने के लिये
अनेक अधबनी कविताएँ चखीं
मैंने तुम्हें देखने के लिए–
खिड़कियों के अधपट ढुलकाये
मित्रों को अनसुना किया
वायदों को झूठ पहनाये
....
तुमने यह कुछ न किया,
केवल अंगुलियों में लिपटते हुए अपने–
आंचल के कोने
कुतर खाये

दुर्बल क्षण

यह आत्म-समर्पण, दुर्बल क्षण ।
शब्दों की अभिधाओं का यह आत्म-हनन
पलकों की सीमाओं में यह सिंधु गहन
खामोशी में फूट रही वाचा प्रतिक्षण
व्यक्त हो रहा भावों का उत्थान-पतन
बना हुआ हो अगर परस्पर मन दर्पण,
बहुत सहज है,
तुम्हीं समझलो
शेष कथन,
यह आत्म समर्पण, दुर्बल क्षण ।।[1]



---

1. स्व० मुक्तिबोधजी द्वारा सम्पादित नागपुर के नया खून में प्रकाशित कविताओं में से एक !

प्रश्न कौन तोड़ेगा

४

पुरुषार्थ

वह मैडम नू है

वियतनाम के खून में डूबते हुए बुद्ध
तुम शायद रोक सके होते इन्सान का युद्ध
.....　　.....　　......
जहाँ दोने की तरह सड़क पर फेंक दी गई हो आत्मा
देह और वासना ने तय कर लिया हो–
कि हर चीज़ है व्यर्थ, हर व्यक्ति है दुरात्मा–
वहाँ बुद्ध का क्या काम ?
वहाँ खून का क्या दाम ?
कोई आश्चर्य नहीं
यदि दोनों ही हो गये हों नाकाम।
...　　...　　....
वियतनाम के कुशासन में
एक विकृत नारी की बदबू है
'संयुक्तराष्ट्र' के सिहरने से क्या होगा,
वह नहीं सिहरेगी
वह मैडम नू है।
....　　...　　....
एक बिगड़ी हुई औरत खून में नहाती है
कि सत्ता को जिये, रूप को पिये,
अत्याचारों के कुहरे में तिलमिलाता है वियतनाम
धूप के लिये।×

× वियतनाम के वर्तमान संघर्ष के बीज-दिनों में
दिनाङ्क ७. १०. ६३ को लिखी गई कविता

पुरुषार्थ

भीतर ही भीतर वहा
कहने की जगह भी न कहा
दर्द वह,
रक्त में सन कर
पुरुषार्थ-वेश में आ गया है
भुजाओं में भुजा
वक्ष में वक्ष बन कर !

जो दृष्टि, छूती रही,
निरन्तर छूती रही
अन्तर-सिन्धु-तल
मुंद कर
अब आकाश को भेदती है
अग्नि-स्फुलिंगों से खुल कर !

क्षमा के लिए बने हुए हाथ
लेते है शस्त्र,
व्यापक क्षमा के लिए।
चारों तरफ अनसुना कोलाहल है
और मुझे सूझते नहीं है शब्द
घबराये हुए लोगों की उपमा के लिए। ×

× भारत-पाक संघर्ष पर

खाकी पोशाक वाला समय

स्वयंवर के धनुष की तरह
अनिर्णय को तोड़ता हुआ समय
वर्फ को झकझोरता हुआ
दुहराता हुआ सिन्धु-मन्थन का
दिशाच्छादित मेघोद्घोष !

व्यक्ति से व्यक्ति तक
वृक्ष से वृक्ष तक
प्रकृति में जो बदलाव है
आश्चर्य, उसमें तैरती हुई नाव है ।

मैं नहीं दे सकता किसी को दोष
मेरे मकान की कीलों
नुकीले कोनों
दरवाजों
और बच्चों की पुस्तकों में भी
छुपाता नहीं है रोष ।

आँखों में अन्तः बल की लाली है
मृत्यु निमंत्रिता है, मित्र है
चूड़ियाँ ?
उतरती हुई चूड़ियाँ भी झंकार करती हैं
घर अलग अलग हों
मगर एक ही चित्र है !

और ड्राइंग रूम पहनना चाहता है खाकी पोशाक
हर जगह एक धक्का देती है
ठिक् ठाक, ठिक ठाऽऽक्, ठिक ठाऽऽऽक्
ऐसी जबरदस्त है समय की धाक !×

× भारत-पाक संघर्ष के दिनों में

बहुत शोर

बहुत शोर, बहुत शोर, बहुत शोर
मुड़ कर भागते हुए बहादुरों का
पराजय ने जिन्हें जकड़ लिया ऐसे चोर !

ईमान से बे-वास्ता और खाली
अपनी मूर्खता पर अपनी ही ताली
झूठ इतना कि झूठ भी दे गाली !
ऐसे शत्रु पर क्या नहीं आती
दया की मतली ?
आपने उस बन्दर की कहानी सुनी होगी
जिसने, तलवार से, उड़ाते हुए मक्खियाँ
अपने मालिक की जान वफादारी से ली !×



× भारत-पाक संघर्ष के दिनों में (१९६५)

आत्म-बोध

एक था शेर
उसने कहा 'वह जंगल का राजा है।'
चिड़िया ने और खरगोश ने
बन्दर ने और लोमड़ी ने
सियार ने और मेमने ने
उसकी बात को सर झुका कर मान लिया,
शेर जंगल का राजा है
यह समाचार
जंगल-जंगल, पहाड़-पहाड़ गूंज गया।
शेर
दूसरे जंगल में गया
उसके सभासदों ने, वहाँ भी, आकाशमुखी होकर
शेर की घोषणा को दुहराया।
एक सौम्य हाथी को यह सब
अजीब सा लगा,
जंगल की तरतीबदार जिन्दगी में यह शोर शराबा
कुछ बेतरतीब-सा लगा !
वह झूमता हुआ आया
कि सभासदों ने अपने राजा को
सूण्ड में लिपटता
और दूर तक लुढ़कता हुआ पाया।

शेर धीरे से उठा, अपने को झाड़ कर
और बड़े प्यार से बोला
हाथों को ताड़ कर
राजा नहीं मानना था भाई !
तो बिगड़े क्यों
यह तो अपनी अपनी पसन्द है
व्यर्थ में झगड़े क्यों ?

सचेत

नदी को देखा है चढ़ाव की जगह पर ?

मासूम रह कर भी रहती है अविचलित
आहिस्ता आहिस्ता होती है संचयित !
और पहुँच जाती है सतह पर !
नदी को देखा है चढ़ाव की जगह पर ?

जल संचयन किया ऐसी नदी का
क्या बिगाड़ सकता है कोई चढ़ाव ?
उसका वेश क्रोध का आवेश नहीं
क्षण-जन्मा नहीं है उसका बहाव ।
उसके चलने में रुकने की गरिमा है
उसका रुकना है गति की वजह पर ।
नदी को देखा है चढ़ाव की जगह पर ?



आक्रामक से !

अय आक्रामक !
मेरे धन्यवाद स्वीकार करो ।
तुमने बहुत किया,
विध्वन्स की लपलपाती हुई जिह्वाएँ लेकर
अपने नर-दैत्य की हवसपर
प्रशान्त भारत के सुर-श्रान्त भू-भागकी—
जीविकाओं को उदरस्थ किया ।
तुम्हारे इस किये पर मैं धन्यवाद देता हूँ
तुम नहीं जानते
इस भू-भाग को निर्दयता से कुतर कर
(उसे शायद छोटा कर)
इस देश के छोटे-से-छोटे अन्तःकरण को
तुम बड़े-से-बड़ा कर गये हो ।
जिन हृदयों पर एक बिन्दुजल नहीं ठहरता था
वे
जलधि की उत्ताल तरंगों में ढल गये हैं ।
जिस जन की अंगुलियाँ
अपनी ही हथेली पर बँधती नहीं थीं
वे राष्ट्र की करोड़ हां करोड़ अंगुलियों की
विराट् मुष्टिका में
पहचानी नहीं जातीं ।
(इस विराट् मुष्टिका का दुर्द्धर्ष प्रहार
तुम्हारी नियति है ।)
तुम स्वीकार करो धन्यवाद, यह तुम्हारी ही कृति है ।

मोह में पड़ी हुई जनता
किस शान से एक नये मोह में बँध गई है ?
वैभव का मोह वैभव के अभाव का मोह है ।
जिनका तन उम्र से पराजित है
उनकी कमर भी
नये हौसलों से सध गई है ।
राष्ट्र की धमनियों में
रक्त-स्रोतों की
अद्भुत प्रवेगता है ।
प्रान्तों की सीमाओं पर अटक जाने वाले प्रवाह
निर्विरोध घूर्णित हैं ।
अय आक्रामक ! मेरे धन्यवाद स्वीकार करो ।
कि अब स्वप्न-व्यूहों से मुक्ति पा गये हम
धरती पर मस्तक रखने के भूले हुए पाठकों
आज शत गुने जोश में दुहरा गये हम !
अब मस्तक मातृ-भूमि पर नत होगा
और हमारे हर पाँव का
तुम्हारी उद्दण्ड छाती पर क्षत होगा ।
जागरण की भेरी, अय आक्रामक !
तुमने बजाई है
मेरे देश की मिट्टी ने
अब कभी न सोने की कसम खाई है
अय आक्रान्ता ! मेरे धन्यवाद स्वीकार करो ।



चीन-भारत संघर्ष पर १९६२

शुरुवाद का बीज

शताब्दियों की उदासी तोड़ दी गई,
चिपकी हुई खामोशी खुरच दी गई
ज़मीन बात करने लगी
पेड़ चलने फिरने लगे
नदियों ने पानी को सजाया
और पहाड़ों के क़द ऊँचे उठे,
आदमी का पहुँचना ऐसी ही बात है,
चाहे वह यात्री हो
या हो किसी फौज का सिपाही........
उसे देखकर सौन्दर्य उमगता है
प्रकृति सँवरती है
जल थिरकता है,
आदमी की जानदार नज़र के सामने
हर बेजान नज़ारा
सचमुच ठुमकता है।
शुरु-शुरु में रहा होगा आदमी
शायद बाद की चीज,
बाद में तो आदमी हो रहा कुछ इस तरह
कि मानों हो हर शुरुवाद का बीज।
इतिहास बनता हुआ वर्तमान
वर्तमान बनता हुआ भविष्य
क्या है, यदि वह नहीं है
आदमी की प्रसन्नता
आदमी की खीज ?

आओ लौटें

कुछ ही देर को सही
आओ लौटें
शताब्दियों के उस पार !
लाज के झूठ से बचे हुए
सभ्यता के क्लेश से मुक्त
निर्द्वन्द्वता में रचे हुए, रुचे हुए !
रंच भी कांपे नहीं
कहीं भी ढांपें नहीं
एक बेझिझक निर्वसनता का सत्कार
करने को तैयार !
आओ लौटें
शताब्दियों के उस पार !
बहुत जमा हो गई हैं
नैतिक अनैतिकताएं
हजार-हजार किलोमीटरों तक
बिलबिला रही हैं
योनि-द्रव में लोटती हुईं
सफेद-पोश कांक्षाएं........
वक्षस्थलों, जंघाओं और पुटठों को
चाटती हुईं जिह्वाएं
पहने हुए वस्त्रों को नकारती आंखें
बीकनी अथवा मिनी पेटीकोटों में,
कसमसातीं
देह-यष्टिकाएं !

आओ, हम नैतिक हों
प्रकृति को प्रकृति की तरह
करें स्वीकार !
कुछ ही देर को सही
आओ लौटें
शताब्दियों के उस पार ।

●

अ-भोग का कवि : भोग की कविता

ये कई औरतें थीं
तन्दुरस्त और जवान
ये, कई युवक थे
इकहरे मगर परेशान ।

×

वे अधलेटी-सी आवाज दे रही थीं
"आओ ऽऽ ......"
ये थक चुके थे और बिलख रहे थे,—
"हमें बचाओ ऽऽ..........।"

×

अचानक वे उठ बैठीं, खड़ी हुईं, दौड़ीं...
(औरतें नहीं घोड़ीं)
युवक (!) भी चौके, कांपे और दौड़े
(दौड़े नहीं लड़खड़ाये)
काश, ये होते घोड़े !

×

नजदीक के वृक्षों पर
टहनियों से खरोंच खाते हुए
ये सब जा चढ़े और खिसयाये
इन नास्तिकों ने भगवान को पुकारा
"यदि प्रभु है तो हमें बचाये ।"

×

औरतों ने डालियां हिलायी
और दुतकारा, बेशर्म ! यहां आओ ।
युवक गिड़गिड़ा उठे "अय डालियों—

अय टहनियों, हमें छुपाओ, हमें बचाओ ।"

×

औरतें क्रुद्ध हुईं, झिड़कती हुई गरजीं
"यह क्या है, आदमी को शोभा नहीं देता"
युवक सुन्न थे और भयभीत थे
जैसे खम्भे पर चढ़े हुए बच्चे का पिता ।

×

आखिर एक युवक
(हां-हां नर)
फुनगियों से उतरा और बुदबुदाया—
"प्रतीक्षातुरा देवियो, नारियो (माताओ) !
सुनो, ध्यान से सुनो,
हम सब लिखेंगे कविता
(यानी कविता के बाद की कविता)
तुम्हारे पास नहीं आयेंगे हम
तुम्हें कविता में खोजेंगे
तुम्हारी निर्वसनता, उद्दण्ड यौनता
और गुदगुदी मांसलता
कविता में भोगेंगे. . . . , .
सुनो . . . .सुनो . . . . सुनो ।"



ठूंठ

ठूंठ को देखा
बदसूरत और इकहरा
उखड़े खुखड़े हाथों वाला
सिर से पांव तक खुरदरा
शीत में अनढंका
ग्रीष्म में विरक्त
वर्षा में अनभींगा
वसन्त में तटस्थ
यह न हंसी की बात है
न ही है झूठ
अनिवार्य है
हमारे भीतर रहे
कहो न कहीं
यह ठूंठ !

जिन्दगी

जिन्दगी मजे की चीज है बशर्ते कि कोई जिये
न जिये कोई
अलग बात है,
ऐसे आदमी को दुनियाँ वाहियात है
और कुछ प्रश्नों की
जिनके उत्तर नामुमकिन हैं, जमात है !
पर, जो जिन्दगी जिये
अपने ओंठ न सिये '
इच्छा हो नदी को देखे
इच्छा हो जल को पिये ।
जिसे प्यास हो, किनारे से बढ़े
प्यास बुझेगी
जिन्दगी का ग्राहक
भीतर देखे या बाहर
—जिन्दगी दिखेगी !
जिन्दगी हवा है अनल है, जल है
आकाश है, माटी है,
इस तरह के और भी तत्व हैं
याने
इस शानदार तोहफे की लाजवाब
—परिपाटी है !
यह सब व्यर्थ नही कहा गया
सोचता हुआ ऋषि
खोजता हुआ वैज्ञानिक
तत्व के अपरिचय को मिटा गया !
हवा, आकाश, भूमि, अनल और जल
सब सबके लिए है सहज और निश्च्छल
अपने लिये जोना दुर्बलता है
समर्पण सुख है, सहजता ही बल !!

कल

कल
समय के हस्ताक्षर मैं करूंगा
यह तय है !
मेरी देह पर वर्तमान है
मन में भविष्य
मैं दोनों को एक साथ जिऊँ
मैं दोनों में एक साथ वहूं
यह
किसी सौन्दर्य की प्रवहमान लय है !
कल
समय के हस्ताक्षर मैं करूंगा
यह तय है !

●

युद्ध

युद्ध हर देश से पांच मिनिट से भी कम दूरी पर है,
यह जमीन, हर रोज, नयी नयी दरारों के जबड़े खोल देती है
लगता है
यह भ्रमणशीला धरी पर नहीं किसी भीमकाय छुरी पर है।
विषाक्त हो रही हैं हवाएं जहर से
संक्रामक कीटाणुओं के, नापाम बमों के
प्राण–लोलुप शब्दों के
अथवा टूटते हुए नियमों के,
इन दिनों
कोई सिहरता नहीं है पढ़ कर कुछ भी,
हर रोज निशान तोड़ दिये जाते हैं
संस्कृति के, इतिहास के, मनुष्यता के,
मासूम बच्चों, धान कूटती स्त्रीयों और अपाहिजों को
नोचते जाते हैं
भूत पंजे शैतान के
हर
आने वाला कल
हजारों, लाखों मनुष्यों और पशुओं के लिए..
सिर्फ एक खयाल है, खौफनाक याददाश्त है
सभवत: इस शताब्दी की चिन्ताकुल कायरता को
सब बर्दाश्त है।]

हर वह
जो गलत है
सर उठा रहा है

एक वहशी, आकाश: को छूती हुई बुलन्दगी से,
हर वह
जो सही है
घुटनों पर है
परेशान है
अपने से, अपनी सच्चाई से, अपनी जिन्दगी से !

....

मुझे भय है
हमारे सही होने में
किसी आस्तीन में छुपे हुए झूठ का
दाग न हो,
मनोविज्ञान की उपेक्षा
यथार्थ से अपरिचय
और जहां क्रिया चाहिए वहां विराग न हो!
मुझे भय है
वायवी
कल्पनाओं के
दृष्टि-धुन्ध में
अतिसाहस का हास्यास्पद परिणाम न हो
कंगारू की तरह अनिश्चय के मरूस्थल में
हमारी पवित्र स्वाधीनता तमाम न हो।



नहीं…नहीं

अन्तरिक्षों को छू रही हैं
प..... र.....छा.....इ....यां
शून्य में स्थापित हो रहे हैं
यात्रालय……
पग-चिह्न पा रही हैं
विरा...ऽ...ऽट निर्जनताएं

नहीं,
जीवन लघु नहीं है।
लघु-मानव क्या है
यदि वह बड़ा है मंगल से, सोम से
सूर्य से ?
महाशून्य के क्रोड़ में हो रहे हैं
समारोह

नहीं,
अक्षर नहीं बँधेंगे आयन्दा वहां
.........जहां
आत्म-वंचनाएं रच रही हैं निर्वसनता
गढ़ रही हैं
झूठे संत्रासों के व्यामोह !

–प्रश्न कौन तोड़ेगा –

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	अन्तिम पंक्ति	सोपते	सौंपते
६	नीचे से ग्यारहवीं पंक्ति	वस्त	वक्त
६४	नीचे से सातवीं पंक्ति	हुआ	हुआ
६६	अन्तिम पंक्ति	कितने दिन बाद	कितने दिन के बाद
८०	नीचे से छठी पंक्ति	करोड़ हां करोड़	करोड़ हां करोड़
८५	ऊपर से छठी पंक्ति	माम ।	माओ.........।
८८	ऊपर से सोलहवीं पंक्ति	हवा हैं	हवा है
९१	अन्त से पहले की पंक्ति	मरूस्थल	मरुस्थल

इनके अतिरिक्त डॉ. धर्मवीर भारती की भूमिका में नीचे से पांचवीं पंक्ति के शुरू में लिखे शब्द 'सहेज' को 'सहज' पढ़ें।